© 2015 IJSRSET | Volume 1 | Issue 3 | Print ISSN : 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099
International Journal of Scientific Research in Science, Engineering and Technology

उर्वशी आख्यान का पौराणिक विकास

डॉ० किरण लता
फ्लैट न० – 27, जे० एफ – 2,
ब्लॉक न० – 5, रोड न० – 12,
राजेन्द्र नगर, पटना,
बिहार (भारत)

सारांश– इस शोधपत्र के माध्यम से उर्वशी–आख्यान के पोरानीक पृष्ठों को अनावृत किया है। क्रमश: भागवतपुराण, विष्णुपुराण, महाभारत में आयी हुई उर्वशी कथा का समीक्षात्मक परिचय दिया गया है। अन्त में उर्वशी के आख्यान का अनुशीलन करते हुए पौराणिक विकास का निष्कर्ष प्रस्तुत किया है।

प्रमुख शब्द– ऋग्वेद, पुराण, उर्वशी, पुरुरवा, शतपथ–ब्रह्मण, भागवतपुराण, शन्धर्वों, ब्रह्मपुराण, वचनभंग, पणबन्ध,विष्णुपुराण,अरणि।

महाभारत में कहा गया है कि इतिहास और पुराण के द्वारा वेदों का उपबृंहण करना चाहिये अर्थात् वैदिक तथ्यों को समझने के लिये महाभारत तथा पुराणों का सन्दर्भ ग्रहण करना चाहिये क्योंकि इन ग्रन्थों में वैदिक परम्परा का विकास हुआ है। यदि केवल वेद के आधार पर ही कोई वैदिक तथ्य को समझने का प्रयास करे और परवर्ती विकास की उपेक्षा करे तो ऊसे हठशर्मी व्यक्ति सए वेद–पुरुष को भय होता है कि व् मुझ पर प्रहार करेगा अर्थात् वास्तविकता को न समझ कर मनमानी व्याख्या करेगा।[1] स्पष्टत: उर्वशी आख्यान को भी जिस प्रकार शतपथ ब्राह्मण में बढ़ाया गया है उसी प्रकार कुछ परवर्ती पौराणिक ग्रन्थों में भी पल्लवित किया गया है।

उर्वशी का आख्यान चन्द्रवंश के राजा पुरूरवा के साथ सम्बद्ध है। इसलिये इन दोनों की चर्चा यत्र–तत्र रोचक एवं व्याख्यात्मक कथाओं के साथ अनेक पुराणों में हुई है। मुख्य रूप से ब्रह्माण्ड, भागवत, मत्स्य, विष्णु तथा वायु पुराण में इसके सन्दर्भ महत्त्वपूर्ण हैं। महाभारत के आदिपर्व तथा वनपर्व में भी उर्वशी की चर्चा हुई है।[2]

महाभारत में उर्वशी का उल्लेख एक कामपीड़ित अप्सरा के रूप में हुआ है जिसने अर्जुन द्वारा उपेक्षित हो जाने पर उनको शाप दिया था। इसी के फलस्वरूप अर्जुन को एक वर्ष तक राजा विराट के प्रसाद में नपुंसक बन कर बृहन्नला के रूप में रहना पड़ा था तथा वे उनकी पुत्री उत्तरा को नृत्य और गान सिखाते थे। इस प्रकार महाभारत में उर्वशी का परम्परागत चरित्र सुरक्षित है जो मानवो में अपने सौन्दर्य का प्रभाव छोड़ने के लिये निरन्तर तत्पर रहती है। ब्रह्माण्ड पुराण में उसे प्रेम की देवी माना गया है।

नारायण के ऊरू से जन्म होने के कारण उसने न केवल अपना नाम ग्रहण किया अपितु देवांश होने से स्वयं शाप और प्रसाद में समर्थ देवता बन गयी। इसीलिये वहाँ कहा गया है कि प्रेमवार्ता की सफलता के लिये उसकी पूजा की जाती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतवर्ष में प्रेम और विवाह की सिद्धि के लिये की जानेवाली मदनपूजा के विकास के पूर्व उर्वशी की पूजा की जाती रही होगी।

अन्य पुराणों में उल्लेख मिलता है कि ब्रह्मा के शाप से उर्वशी को मनुष्य योनि में आना पड़ा था। बदरिकाश्रम में पुष्प चुन रही उर्वशी के मनोहर रूप को देखकर मित्र और वरुण इन दोनों का धैर्य जाता रहा तथा उन दोनों के तेज से अगस्त्य तथा वसिष्ठ का जन्म हुआ। केवल मित्र और वरुण ही उर्वशी के रूप पर मुग्ध नहीं हुए थे अपितु सत्यधृति के पुत्र शरद्वान् भी उर्वशी को देखते ही व्याकुल होकर स्खलित हो गये। उनके तेज से कृप और कृपी का जन्म हुआ। कृपाचार्य तो कौरव पाण्डवों के शिक्षक बने थे। कृपी से द्रोणाचार्य का विवाह हुआ था।

भागवतपुराण में उर्वशी-कथा

भागवतपुराण के नवम स्कन्ध के चौदहवें अध्याय में पुरूरवा और उर्वशी की कथा विस्तार से दी गयी है। स्पष्टत: भागवतपुराण की भाषाशैली तथा कवित्व-मयता की दृष्टि से इसे परवर्ती विकास कह सकते हैं क्योंकि ब्रह्माण्डपुराण (3.66.46, 66.4-5), मत्स्यपुराण (24.23), वायुपुराण (2.16, 90.45, 91.4) तथा विष्णुपुराण (4.6.35-78) में भी इस कथा के सूत्र सूक्ष्म या स्थूलरूप में सुरक्षित हैं। स्थिति जो भी हो, भागवतपुराण के पूर्ववर्ती ब्रह्मपुराण में पुरूरवा की प्रशंसा मुक्तकण्ठ से की गयी गया तथा अनाचार करने लगा' शासन पर अधिष्ठित होकर पुरूरवा ने अपने तथा अपने अधीनस्थ राजाओं के प्रदेशों (जैसे उत्कल, गया इत्यादि) का धर्मपूर्वक पालन किया। वह बड़ा तेजस्वी, दानशील तथा यज्ञ करने वाला था। यज्ञों मे वह विपुल दक्षिणाएँ दिया करता था। वह ब्रह्मवादी अर्थात् ब्रह्मविषयक कथाएँ कहने वाला राजा था। युद्ध मे शत्रुओं के द्वारा अपराजेय था। अग्निहोत्र कर्म का आविष्कार उसी ने किया था। शतपथ ब्राह्मण में भी है। कहा गया है कि इला और गन्धर्वराज बुध से पुरूरवा का जन्म हुआ था। पुराणों में इसके प्रारंभिक शासनकाल की बड़ी प्रशंसा हुई है। किन्तु आगे चलकर वह मदोन्मत्त हो गया तथा अनाचार करने लगा।[3] वह बड़ा तेजस्वी, दानशील तथा यज्ञ करने वाला था। यज्ञों में वह विपुल दक्षिणाएँ दिया करता था। वह ब्रह्मवादी अर्थात् ब्रह्मविषयक कथाएँ कहनेवाला राजा था। युद्ध में शत्रुओं के द्वारा वह अपराजेय था। अग्निहोत्र कर्म का अवोष्कार उसीने किया था। शतपथ ब्राह्मण में भी इसका संकेत मिलता है। यज्ञों का भी व्यापक प्रचार पुरूरवा ने किया था। वह सत्यवादी, पवित्र बुद्धिवाला एवं अपनी प्रेमलीला को सम्यक् गुप्त रखनेवाला भी था। तीनों लोकों में यश प्राप्त करने में वह अद्वितीय था -

बुधस्य तु मुनिश्रेष्ठा विद्वान् पुत्रः पुरूरवाः।
तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदाक्षिणः।।
ब्रह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्युधि दुर्दमः।
आहर्त्ता चाग्निहोत्रस्य यज्ञानाञ्च महीपतिः।।
सत्यवादी पुण्यमतिः सम्यक् संवृतमैथुनः।

अतीव त्रिषु लोकेषु यशसाऽप्रतिमः सदा।।

पुरूरवा की प्रशंसा उसके कार्यों के कारण सर्वत्र होती थी। अपनी कुशल नीति तथा धर्मपालन के कारण वह न केवल अपनी प्रजाओं में अपितु दूर-दूर तक अन्य लोगों के बीच भी वह लोकप्रिय बन गया थ। व्यक्तिगत सौन्दर्य और असाधारण शौर्य उसके दो महत्वपूर्ण आकर्षक गुण थे। मनुष्यलोक की सीमा को लाँघ कर देवलोक की इन्द्रसभा में भी उसका कीर्तिगान होता था। देवसभा में एकबार देवर्षि नारद पुरूरवा के रूप, गुण, उदारता, शील (आचरण), धन तथा पराक्रम के विषय में गीत गा रहे थे जिससे उर्वशी पुरूरवा के प्रति कामासक्त हो गयी तथा उसके समीप जाने के लिये मचल उठी। उसके हाव-भाव से मित्र और वरुण ने उसे शाप देकर देवलोक को छोड़ने के लिये विवश कर दिया और वह नरलोक में चली गयी -

तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान्।

श्रुत्वोर्वशीन्द्रभवने गीयमानान् सुरर्षिणा।।

तदन्तिकमुपेयाय देवी स्मरशरार्दिता।

मित्रावरुणयोः शापादापन्ना नरलोकताम्।।

शाप से अभिभूत उर्वशी मानवलोक में आ गयी तथा पुरूरवा के समक्ष पहुँचकर उसे अपने रूपवैभव तथा हाव-भाव से उसने आकृष्ट कर लिया।

राजा पुरूरवा उर्वशी के आकर्षण में इसप्रकार निबद्ध हो गया कि उसने तत्काल उर्वशी से प्रणय-याचना की। उर्वशी ने महाराज से तीन शर्तें रखीं और कहा कि यदि आप उन्हें स्वीकार कर लें तो मैं आपके साथ रहने में अपना सौभाग्य समझूगी। किस ललना का मन तथा दृष्टि तुम्हारे ऊपर आसक्त नहीं हो जायेगी ? सबका हृदय तुमसे रमण की कामना में उत्फुल्ल हो जायेगा। किन्तु मेरी शर्तें इस प्रकार हैं -

(1) मेरे पास ये दो मेष शावक (**उरणकौ**) हैं जो मुझे बहुत प्रिय हैं। आपको इन दोनों का पालन न्यास के रूप में करना पड़ेगा। इनके बिना मैं एक क्षण भी नहीं रह सकती हूँ।

(2) मेरा आहार केवल घृत ही होगा।

(3) समागम के अतिरिक्त आपको कभी मैं वस्त्रहीन नहीं देखू।

उर्वशी के रूपसौन्दर्य पर मोहित राजा पुरूरवा ने तत्काल सारी शर्तें मान लीं। उन्होंने कहा कि ऐसा सुन्दर शरीर-सौष्ठव एवं ऐसा नरलोक को मुग्ध करनेवाला हाव-भाव रहने पर कोन मनुष्य तुम्हारी सेवा में नहीं लग जायेगा ? तुम स्वयं प्राप्त दिव्य रूपवाली रमणी हो

अहो रूपमहो भावो नरलोकविमोहनम्।

को न सेवेत मनुजो देवीं त्वां स्वयमागताम्।।

इसके अनन्तर पुरूरवा ने उर्वशी के साथ सुन्दर वनों, पर्वतों, नदियों तथा रमणीय स्थानों पर विहार किया। पुरूरवा के सहवास सुख के अनुभव में उर्वशी ने स्वर्गसुख को भी भुला दिया।

पुराणों में स्वर्ग की अप्सराओं के मानवलोक में आने तथा मानवों से उनके सहवास की अनेक कथाएँ प्राप्त होती हैं। किन्तु उन कथाओं से प्रस्तुत उर्वशी-पुरूरवा की कथा की विलक्षणता यह है कि अन्य कथाओं में किसी ऋषि की उग्र तपस्या से अपने इन्द्रासन के छिन जाने की आशंका से त्रस्त देवराज इन्द्र

के द्वारा उस ऋषि के व्रत को भंग करने के लिये अप्सराओं का भू-लोक में भेजा जाना वर्णित हुआ है। पुरूरवा के वंश में ही उत्पन्न दुष्यन्त ने जिस शकुन्तला से प्रेम किया वह भी इसी प्रकार महर्षि विश्वामित्र का व्रत भंग करने के लिये देवराज इन्द्र के द्वारा भेजी गयी अप्सरा मेनका से उत्पन्न हुई थी' परन्तु वर्तमान कथानक में उर्वशी किसी की आज्ञा से पुरूरवा का व्रतभंग करने के लिये छल से उसके पास नहीं आयी थी, प्रत्युत उसके गुणों और सौन्दर्य पर मुग्ध होकर ही उसने पुरूरवा को स्वीकार किया था। इससे पुरूरवा के व्यक्ति का एक उदात्त चित्र प्रकट होता है जिसका समर्थन उसकी प्रशंसा में दिये गये ब्रह्मपुराण के उपर्युक्त सन्दर्भ से होता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि पुराणों में दैवी और मानुषी शक्तियों का समन्वय करने का प्रयास हुआ है। भाव-सौन्दर्य तथा प्रेम की उदात्तता की वैदिक परम्परा को अग्रसारित करने का अनुपम में कार्यक्रम भी इससे स्पष्ट होता है। स्मरणीय है कि यह वही अप्सरा थी जिसके अभाव में इन्द्र को अपनी नगरी अमरावती सूनी और निर्जीव लगने लगी थी। इन्द्र की सभा की सुन्दरता उर्वशी के अभाव में समाप्त हो गयी थी। मानवलोक के अप्रतिम राजा पुरूरवा से उर्वशी का समागम देवलोक के अधिपति के लिये असह्य था। देवराज ने गन्धर्वों के द्वारा षड्यन्त्र कराया और दोनों प्रेमी-प्रेमिका को पृथक् करने का उपाय किया। इस षड्यन्त्र में उर्वशी की शर्तों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

गन्धर्वों ने एक दिन रात में घोर अन्धकार छा जानेपर उर्वशी के दोनों मेष-शावकों को चुरा लिया। वे शावक उर्वशी के द्वारा राजा के संरक्षण में धरोहर के रूप में रखे गये थे। उन शावकों को ले जाते हुए देखकर उर्वशी रोनेलगी कि हाय ! मैं ऐसे नपुंसक असमर्थ पति के द्वारा छली गयी हूँ जो अपने को वीर मानता है। उसके विश्वास में आकर मैं मारी गयी, दस्युओं ने मेरे बच्चों को चुरा लिया और मेरा तथाकथित पति रात में नारी के समान डर करके दुबका रह गया -

हतास्म्यहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना।

यद्विश्रम्भादहं नष्टा हतापत्या च दस्युभिः।।

यः शेते निशि संत्रस्तो यथा नारी दिवा पुमान्।।

कहीं-कहीं कथा मिलती है कि गन्धर्वों ने उर्वशी के एक-एक मेषशावक को चुराया और एक शावक की आवाज से व्याकुल होकर जब उर्वशी ने राजा को मेष की रक्षा के लिये पुकारा तो उर्वशी के समक्ष नग्न रूप में न जाने की शर्त को ध्यान में रख कर राजा चुप रहा, इसी बीच गन्धर्वों ने दूसरा मेष भी चुरा लिया। तभी उर्वशी ने राजा की कड़े शब्दों में भर्त्सना की। अब राजा विवश हो गया तथा तलवार लेकर वस्त्रहीन अवस्था में ही कुपित होकर बाहर निकला। उसने सोचा था कि इस घोर अन्धकार में उर्वशी मुझे नहीं देख पायेगी। किन्तु वहाँ तो इन्द्र का षड्यन्त्र चल रहा था। गन्धर्वों ने राजा के भय से मेष-शावकों को तो छोड़ दिया किन्तु बिजली चमकने लगी और दोनों मेषों को गोद में लिये हुए आते नग्न राजा को उर्वशी ने देख लिया। स्पष्टतः उर्वशी के द्वारा रखी गयी तीसरी शर्त (उपबन्ध) का यह अतिक्रमण था। अब उर्वशी के स्वर्गलोक में लौटने का अवसर मिल गया। वह वचनभंग होते ही अन्तर्हित हो गयी। राजा ने उसकी सुनसान शय्या देखी (ऐलोऽपिशयने जायामपश्यन् विमना इव)। इससे वह अपने उर्वशी - गत चित्त को शान्त करने के लिये पृथ्वी पर पागल के समान जहाँ-तहाँ घूमने लगा (**तच्चित्तो विह्वलः शोचन् बभ्रामोन्मत्तवन्महीम्**)।

अपने भ्रमण के क्रम में पुरूरवा ने उर्वशी का यथाशक्ति अन्वेषण किया। खोजते-खोजते राजा कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी के तट पर पहुँचे। नदी में उर्वशी की पाँच सखियाँ प्रमुदित होकर स्नान कर रही थीं। उन्हीं में उर्वशी भी विद्यमान थी। तब पुरूरवा ने अपने विरह की अभिव्यक्ति करते हुए प्रसिद्ध ऋग्वेदीय सूक्त का प्रकाशन किया। भागवत पुराण में उक्त सूक्त के कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों को भाषान्तर में प्रस्तुत किया गया है -

अहो जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि।

मां त्वमद्याप्यनिर्वृत्य वचांसि कृणवावहै।।

सुदेहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया।

खादन्त्येनं वृका गृध्रास्त्वत्प्रसादस्य नास्पदम्।।

अर्थात् अरी कठोर हृदय, अरी जाया का नाम हँसाने वाली, तुम इस प्रकार मुझे छोड़कर मत जाओ, कृपया ठहर जाओ। तुम मुझसे असंतुष्ट हो। कृपया शांतिपूर्वक हमदोनों परस्पर वार्तालाप करें। यदि तुम चली जाओगी तो यह शरीर नष्ट हो जायेगा, इसे तुमने अपने प्रेम में बहुत दूर तक पहुँचा दिया है। इसे भेड़िये या गीध खा जायेंगे यदि इसे तुम्हारी कृपादृष्टि नहीं प्राप्त होगी।

कुछ पुराणों में उर्वशी के पलायन का एक दूसरा कारण दिया गया है। वहाँ कहा गया है कि उर्वशी के साथ विहार करने में राजा इस प्रकार आसक्त हो गया कि उसने राज्य की देख-भाल भी छोड़ दी। इससे प्रजाओं में बहुत क्षोभ उत्पन्न हुआ। उन्हे राजा और उर्वशी के बीच पणबन्ध की बात मालूम थी। अत: प्रजाओं में से ही कुछ लोगों ने रात को उस समय उर्वशी के मेषों को चुरा लिया जबकि राजा निश्चिन्त होकर नग्नावस्था में पड़ा हुआ था। शेष कथा वही है कि दूसरे मेष के चुरा लिये जाने पर उर्वशी ने कड़े शब्दों में राजा की निन्दा की।

स्थिति जो भी हो, पुराणों की परम्परा विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित दन्तकथाओं को आत्मसात् करने की रही है। इसलिये कथाखण्डों में भी भिन्नता मिलना आश्चर्य की बात नहीं है। भागवतपुराण में आगे कहा गया है कि उर्वशी पुरूरवा को उपदेश देती है कि तुम पुरुष हो तुम्हें इस प्रकार कातर होना ठीक नहीं है। तुम मत मरो। अपने शरीर को भेड़ियों को समर्पित मत करो। यह जान लो कि स्त्रियों से मैत्री कभी स्थायी नहीं होती है क्योंकि उनका हृदय अत्यधिक क्रूर असहिष्णु और साहस के कार्यों में आनन्द लेनेवाला होता देती हैं। यहाँ भागवतपुराण के लेखक ने अवसर देखकर उर्वशी के मुख से स्त्री-जाति की अत्यधिक निन्दा करायी है। भारतीय श्रमण परम्परा में भी स्त्रियों की इसी प्रकार निन्दा की है। वे अपने विश्वासप्राप्त (विश्रब्ध) पति या भाई को भी छोटे से स्वार्थ के कारण मार गयी है। अश्वघोष ने सौन्दरनन्द के अष्टम सर्ग में एक भिक्षु के द्वारा पूरे सर्ग में स्त्री-निन्दा करायी है। भागवतपुराण में भी उर्वशी कहती है कि स्त्रियाँ अनजान व्यक्तियों में झूठा विश्वास तथा आश्वासन देकर उसका साथ छोड़ देती हैं एवं निरन्तर नये-नये व्यक्तियों की खोज में रहती हैं (**नवं नवमभीप्सन्त्य: पुंश्चल्य: स्वैरवृत्तय:**)।

इस प्रसंग में पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी की टिप्पणी है कि उर्वशी ने सामान्य स्त्रियों की प्रकृति का वर्णन नहीं किया है, अपितु अप्सराओं की दूषित प्रकृति ही निरूपण उसने किया है। अप्सरा या गन्धर्व जाति का व्यवसाय था नृत्य, गान तथा वाद्य के द्वारा रसिकजनों का मनोरञ्जन करना। ऐसी स्थिति में कोई

प्रेम–व्यापार करने लगे तो उसका स्थायित्व अवश्य ही शंकास्पद होगा। व्यावहारिकता और भावुकता का इस प्रकार विभाजन उर्वशी ने किया है। यही उसकी अर्थवादात्मक उक्तियों का काव्यार्थ है।

उर्वशी ने राजा को यह बताया कि उसने गर्भधारण किया है। इसके अतिरिक्त एकवर्ष के बाद राजा को अपने साथ रहने के लिये उसने आहूत किया तथा यह भी कहा कि राजा को उसी से अन्य पुत्र भी होंगे। राजा उर्वशी को गर्भवती जानकर प्रसन्न हुआ तथा उसके आश्वासन पर अपने नगर में लौट आया। एकवर्ष के बाद पुरूरवा उस उर्वशी के पास लौटा जो अब एक वीर पुत्र की माता बन चुकी थी (**पुनस्तत्र गतोऽब्दान्ते उर्वशी वीरमातरम्**)।

इसके बाद भागवतपुराण में शतपथब्राह्मण वाली उत्तरकथा को समाविष्ट किया गया है और उसकी व्याख्या कर्मकाण्ड के पिञ्जर से निकालकर साहित्यिक रूप में की गयी है। जब राजा उर्वशी के पास एक वर्ष के बाद पहुंचा तो उर्वशी ने उसकी विरहातुर दयनीय दशा देखकर परामर्श दिया कि तुम गन्धर्वों को प्रसन्न करो। वे ही प्रसन्न होकर मुझे तुम्हारे साथ सदा रहने की अनुमति दे सकते हैं। तदनुसार राजा ने गन्धर्यों को अपनी स्तुतियों से प्रसन्न किया। उन्होंने राजा को एक अग्निपात्र (अग्निस्थाली) दिया। राजा उसी पात्र को उर्वशी समझ कर वन में विचरण करने लगा। कहीं–कहीं गन्धर्वों के द्वारा राजा को एक शमीवृक्ष की शाखा दिये जाने का उल्लेख है।[4] किन्तु भागवतपुराण में कहा गया है कि जब राजा को यह बोध हुआ कि यह तो स्थालीमात्र है, उर्वशी नहीं तो उसने स्थाली को वन में रख कर अपने घर की ओर प्रस्थान किया।

कुछ दिनों के बाद राजा को यह ध्यान आया कि गन्धर्वों ने वह स्थाली मुझे उर्वशी को प्राप्त करने के साधन के रूप में दी थी, उसे छोड़कर मैने अच्छा नहीं किया। अत: वह उसी स्थान पर पहुंचा जहाँ स्थाली को छोड़ आया था। वहाँ स्थाली तो नहीं मिली, किन्तु उसने एक शमीवृक्ष को देखा। शमी को भारतीय परम्परा में अग्निगर्भ कहा जाता है। इस कथा से स्पष्ट होता है कि शमी की उत्पत्ति अग्नि की स्थाली से हुई है। आगे भी इसका संकेत मिलता है। शमीवृक्ष के काष्ठ से राजा ने दो अरणियाँ (आग जलाने की लकड़ियाँ) बनायीं। उर्वशी के लोक को प्राप्त करने की कामना से राजा पुरूरवा ने यज्ञ किया। उत्तर अरणि को उसने अपने रूप में तथा नीचे की अरणि को उर्वशी के रूप में कल्पित कर के मध्य में सन्तान की कल्पना करते हुए राजा ने विश्व का प्रथम यज्ञ किया। अरणि–मंथन से भगवान् अग्नि प्रकट हुए। उसी अग्नि के तीन विभाग हुए – गार्हपत्य, आहवनीय तथा दक्षिण। इस अग्नि से यज्ञपति विष्णु का यजन राजा ने किया। यह सकाम उपासना थी क्योंकि उर्वशी के लोक को प्राप्त करने की राजा कामना कर रहा था।'

श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार पुरूरवा के यज्ञ करने के पहले सत्ययुग का समय था। पुरूरवा सत्ययुग और त्रेतायुग के सन्धिकाल में उत्पन्न हुआ था। सत्ययुग में वेदों का विभाजन नहीं हुआ था। पुरूरवा के काल में ही यज्ञ के लिये उपयोगी होने के कारण वेदों का विभाजन ऋक्, यजुस् तथा सामन् के रूप में हुआ एवं वेद के त्रयीविद्या के रूप में प्रसिद्धि मिली –

एक एव पुरा वेद: प्रणव: सर्ववाङ्मय:।

देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निवर्ण एव च।।

पुरूरवस एवासीत् त्रयी त्रेतामुखे नृप।

अग्निना प्रजया राजा लोकं गन्धर्वमेयिवान्।।

युगों के विभाजन में भी यह मत प्राप्त होता है कि जब वेद अविभाजित अर्थात् एकरूप होकर अवस्थित थे, तब उस काल को सत्ययुग कहा गया था। जब त्रेता अग्नि (अर्थात् गार्हपत्य, आहवनीय एवं दक्षिणाग्नि) के आधार पर कर्मकाण्ड चलने लगा तब त्रेताग्नि पर शास्त्रीय विधियों के समश्रित हो जाने से उस युग का अमिधान त्रेतायुग हो गया।

पुराणों में यह प्रसिद्धि है कि राजाओं के कुल में पुरूरवा प्रथम यज्ञकर्ता हुए जबकि जनमेजय अन्तिम यज्ञकर्ता थे।

उर्वशी के पास राजा एक वर्ष के बाद गया और उससे राजा को छः पुत्र प्राप्त हुए- आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय तथा जय। यह सूची भागवतपुराण की है अन्य पुराणों में उर्वशी के पुत्रों के नामों में भेद मिलता है। प्रसिद्ध राजा नहुष आयु के ही पुत्र थे। वायुपुराण में इन पुत्रों के नाम आयु, अमावसु, विश्वावसु, धीमान, शतायु तथा गतायु थे।[5]

विष्णुपुराण में उर्वशी-कथा

विष्णुपुराण के चतुर्थ अंश (भाग) के षष्ठ अध्याय में उर्वशी का आख्यान ईषत् परिवर्तित रूप में ललित साहित्यिक गद्य में वर्णित है। यहाँ उस आख्यान का समीक्षात्मक परिचय देना प्रासंगिक है। वहाँ कहा गया है कि बुध और इला का पुत्र पुरूरवा अत्यधिक दानशील और तेजस्वी था। उस सत्यवादी तथा रूप के सम्राट् (**अतिरूपस्विनम्**) पुरूरवा को उर्वशी ने एकबार देखा। उर्वशी को मित्र और वरुण ने शाप दिया था कि तुम्हें मनुष्यलोक में निवास करना पड़ेगा। दर्शनमात्र से उर्वशी अपने सम्मान तथा स्वर्ग के समस्त सुखाभिलाषों को छोड़कर उसके प्रति आसक्त होकर उसके पास पहुँची **(दृष्टमात्रे च यस्मिन्नपहाय मानमशेषस्वर्गसुखाभिलाषमपास्य तन्मना भूत्वा तमेव चोपतस्थे)।[6]'**

पुरूरवा ने भी उर्वशी को देखा जो सभी लोकों की स्त्रियों से सुन्दरता, कोमलता, लावण्य, विलास, हाव-भाव आदि गुणों की दृष्टि से बढ़-चढ़ कर थी। पुरूरवा का चित्र उर्वशी के सौन्दर्य के अधीन हो गया। वे दोनों ही परस्पर आसक्त होकर एक-दूसरे को देखते हुए अपने सभी कार्यों को छोड़कर (परित्यक्त-समस्तान्य-प्रयोजनम्) अवस्थित रहे। अन्ततः राजा ने ही अपनी प्रगल्भता के कारण प्रणयनिवेदन किया। उन्होंने कहा- हे सुन्दरि, मैं तुम्हारे प्रति अत्यधिक कामना से अभिभूत हूँ, तुम मेरे ऊपर कृपा करो और मेरे अनुराग को स्वीकार करो। ऐसा कहे जाने पर उर्वशी लजाने लगी, उसने अपना मुँह स्वीकृति में झुका लिया। उसने कहा कि ऐसा अवश्य हो सकता है यदि आप मेरी कुछ शर्तों के पालन को स्वीकृति दें (भवत्वेवं यदि मे समयपरिपालनं भवान् करोति)। राजा ने शर्तों के विषय में पूछा तो उर्वशी ने अपनी शर्ते सुना दीं। ये वही शर्तें थी जो शतपथब्राह्मण या अन्य पुरणों मे वर्णित हैं। राजा ने उसकी सारी बातें मान ली और उर्वशी के साथ वह अलकापुरी में, चैत्ररथ आदि वनों में एवं निर्मल प्रस्फुटित कमलवनों वाले सरोवरों में विहार करते हुए इकसठ वर्ष बिता दिये। उनका आनन्द दिनानुदिन बढ़ता ही जा रहा था (**अनुदिनप्रवर्धमानप्रमोदः**)।

उर्वशी भी पुरूरवा के साथ विषयों का उपभोग करती हुई स्वर्गलोक के अपने बीते दिनों को भी भूल गयी। अपने मानवप्रेमी के साथ उसका अनुराग भी अनुदिन बढ़ता ही जा रहा था। उधर उर्वशी के बिना देवलोक का आकर्षण सूना हो गया था। अप्सराओं, सिद्धों तथा गन्धर्वों को भी देवलोक उद्विग्न कर रहा था (**नातिरमणीयोऽभूत्**)। विश्वावसु ने गन्धर्षों के साथ मिलकर उर्वशी की पुन: स्वर्गलोक में वापस लाने का उपाय सोचा। वह उर्वशी और पुरूरवा के बीच हुए पणबन्ध को जानता था (समयविद्)। उपाय के रूप में उसने रात में आँखों के सामने ही एक मेष को चुरा लिया (नयनाभ्यासादेकमुरणकं जहार)। वह मेष आकाशमार्ग से ले जाया जा रहा था। उसकी आवाज उर्वशी ने सुनी। वह बोलने लगी कि मुझे अनाथ जानकर कोई मेरे पुत्र को चुराये जा रहा है, हाय! मैं किसकी शरण में जाऊँ ? राजा ने उर्वशी का विलाप तो सुना किन्तु वह यह सोचता रहा कि इस समय निकलने पर उर्वशी मुझे वस्त्रहीन अवस्था में देख लेगी। इसीलिये वह नहीं निकला। अब गन्धर्वों का उत्साह बढ़ गया और उन्होंने दूसरे मेष को भी चुरा लिया। यह मेष भी आर्तस्वर में चिल्लाने लगा। इसके शब्द को सुनकर उर्वशी आक्रोशपूर्ण वाणी में कहने लगी कि मैं पतिविहीन हूँ, निन्दनीय पुरुष के आश्रय में हूँ (अभर्तृका कुपुरुषाश्रया)। उसकी आर्तवाणी सुनकर राजा को क्रोध आ गया और वह अन्धकार देखकर (अपने नग्नरूप में न देखे जाने के लिये आश्वस्त होकर) हाथ में तलवार लेकर यह कहते हुए पीछे दौड़ा कि रे दुष्ट, तुझे अभी मार डालता हूँ। इसी बीच में गन्धर्वों ने अत्यन्त चमकीली बिजली उत्पन्न कर दी जिसकी प्रभा से उर्वशी राजा को वस्त्रहीन देखकर, अपने पणबन्ध का अतिक्रमण मानकर, तत्काल चली गयी।

गन्धर्वों का काम पूरा हो गया था क्योंकि उर्वशी को स्वर्गलोक में पुन: ले आना उनका कार्य था। किन्तु उर्वशी वस्तुत: स्वर्ग नहीं पहुँची। यह आगे के विवरण से स्पष्ट होता है। गन्धर्षों ने दोनों मेषों को वहीं छोड़कर स्वर्ग का रास्ता अपनाया। राजा उन मेषों को लिये हुए जब प्रसन्नचित्त हो अपने शयनागार में पहुँचा तो उर्वशी नहीं दिखाई पड़ी। उसे न देखने से राजा वस्त्रहीन अवस्था में ही पागल के समान इधर-उधर घूमने लगा। राजा नग्नावस्था में ही घूमने लगा था, यह विष्णुपुराण में ही निर्देश है अन्य पुराणों में नहीं।

भ्रमण करता हुआ राजा कुरुक्षेत्र पहुँचा। वहाँ उसने एक कमलसरोवर में अन्य चार अप्सराओं के साथ विहार करती हुई उर्वशी को देखा। हम देख चुके हैं कि भागवतपुराण में पाँचो सखियाँ कुरूक्षेत्र के निकट सरस्वती नदी में विहार कर रहीं थी। स्थिति जो भी हो उर्वशी का सखियों के साथ जलविहार चल रहा था जबकि राजा ने ऋग्वेदीय सूक्त की स्वभाषित ऋचाओं का उच्चारण किया। उसने उन्मत्त के समान कहा कि हे जाये, ठहर जा, अरी निष्ठुर हृदयवाली, अरी कपट रखनेवाली, वार्तालाप के लिये थोड़ी देर ठहर जा।

उर्वशी ने महाराज को कहा कि अज्ञानियों के समान चेष्टा करने से काई लाभ नहीं होगा। इस समय मैं गर्भवती हूँ (अन्तर्वत्नी अहम्)। आप एक वर्ष के बाद यहीं आ जायें। उस समय आपको एक पुत्र होगा तथा एक रात मैं भी आपके साथ रहूँगी। उर्वशी के द्वारा इस प्रकार का आश्वासन पाकर राजा पुरूरवा प्रसन्न मन से अपने नगर को चला गया उर्वशी ने अपने साथ विहार करनेवाली अन्य अप्सराओं को राजा का परिचय दिया कि यही वह पुरुष-श्रेष्ठ है जिसके साथ मैं इतने दिनों तक प्रेमाकृष्ट चित्त से भू-मण्डल में रही थी (**अयं स पुरुषोत्कृष्टो येनाहमेतावन्तं कालमनुरागाकृष्टमानसा सहोषितेति**)।

अप्सराओं ने पुरूरवा के रूप वैभव को देखकर उर्वशी को बधाई दी तथा कहा कि ऊसा मनोहर आकार देखकर हमारी भी लालसा होती है कि इन्हीं के साथ रहें। भागवतपुराण में यह बात नहीं दी गयी है। किन्तु वहाँ उर्वशी और राजा के बीच हुए मार्मिक संवाद का उल्लेख है तथा जिसमें उर्वशी के द्वारा स्त्री जाति की निन्दा करायी गयी है। ऋग्वेद के एक सम्बद्ध मन्त्र को आधार बनाकर[7] स्त्रियों के कपटपूर्ण व्यवहार पर काफी कुछ कहा गया है। इसे ऊपर दिखाया जा चुका है। विष्णुपुराण में इन विषयों पर मौन धारण किया गया है। अवश्य ही भागवतमहापुराण भारतीय दार्शनिकों की उस आंशिक प्रवृत्ति का परिचय देता है जिसमें स्त्रियों को तपोमार्ग का विघ्न एवं साधना का अन्तराय कहा गया था।

राजा पुरूरवा एक वर्ष बीतने पर उसी स्थान पर पहुँचा। उर्वशी ने राजा को आयु नामक बालक दिया। उसके बाद राजा के साथ एक रात रहकर पाँच पुत्र उत्पन्न करने के लिये उर्वशी ने गर्भधारण किया। यह बात विष्णुपुराण में अतिप्राकृत तत्त्व के समावेशार्थ दी गयी है। सम्भवत: इस अतिप्राकृत तत्त्व का समावेश इसलिये किया गया कि उर्वशी से राजा पुरूरवा को छह पुत्र हुए थे, जबकि पुराण के अनुसार मृत्युलोक में उर्वशी के साथ पुरूरवा का अधिक दिनों तक निवास नहीं संभव हो सका। आगे की कथा से स्पष्ट है कि पुरूरवा उर्वशी के साथ गन्धर्वलोक में निवास करनेलगे। भागवतपुराण में भी इसका निरूपण है, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं (**उर्वशीलोकमन्विच्छन् सर्वदेवमयं हरिम्। अग्निना प्रजया राजा लोकं गन्धर्वमेयिवान्**)। विष्णुपुराणकार ने मानवलोक में ही पुरूरवा के छह पुत्रों की व्यवस्था के लिये उपर्युक्त कथा का निवेश किया है। संस्कृत काव्यों में दी असंगत विषयों के समन्वय के लिये ऐसे अतिप्राकृत तत्त्वों का समावेश स्वाभाविक है जैसे शाकुन्तल नाटक में दुर्वाशा के शाप की कल्पना, उत्तररामचरित में छायांक का समावेश इत्यादि।

उर्वशी ने राजा पुरूरवा को यह बताया कि हमारे पारस्परिक स्नेह के कारण गन्धर्वगण महाराज को अभीष्ट वर देना चाहते हैं, आप उनसे वर माँग लें। पुरूरवा ने अपनी उपलब्धियों का विवरण दिया कि उसने समस्त शत्रुओं को जीत लिया है, उसकी इन्द्रियों की सामर्थ्य यथावत् है। बन्धुओं, असंख्य सेना तथा कोश से भी वह सम्पन्न है। इसलिये इस समय उर्वशी के साथ एक ही लोक में निवास करने के अतिरिक्त (**उर्वशी-सालोक्यात् अन्यत्**) कोई अन्य वस्तु काम्य या प्राप्तव्य नहीं है। इसलिये मैं उसी के साथ कालयापन की कामना करता हूँ। गन्धर्वों ने राजा को अग्निस्थाली (अग्नियुक्त पात्र) दी तथा यह बताया कि इस अग्नि का वैदिक विधि से गार्हपत्य, आहवनीय एवं दक्षिणाग्नि के रूप में तीन विभाग करके इसमें उर्वशी के सालोक्य (समान लोक में निवास) की कामना से सम्यक् यज्ञ करें तो अवश्य ही अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति हो जायेगी। राजा गन्धर्वों से अग्निस्थाली लेकर चल पड़ा।

एक वन में उसने सोचा कि मैने बहुत बड़ी मूर्खता की। अग्निस्थाली को ले आया किन्तु अग्निस्थाली को लेकर जब राजा अपने नगर में लौटने लगा तो मार्ग में अवस्थित उर्वशी को नहीं ला सका। ऐसा विचार करके राजा ने अग्निस्थाली को व्यर्थ समझ कर वन में ही छोड़ दिया तथा वह अपने नगर में लौट आया। किन्तु आधी रात बीत जाने पर (**व्यतीतेऽर्धरात्रे**) उसकी नींद टूट गयी तो वह सोचने लगा कि गन्धर्वों ने मुझे वह अग्निस्थाली उर्वशी के सालोक्य की प्राप्ति के लिये ही तो दी थी किन्तु मैने उसे जंगल में ही छोड़ दिया' [8] उसने निर्णय लिया कि अग्निस्थाली को लाने के लिये मुझे पुन: उसी स्थान पर जाना

चाहिये। राजा उठकर पुनः वहाँ गया तो उसने छोड़े हुए अग्निपात्र को नहीं देखा। अवश्य ही वह शमीगर्भक पीपल का वृक्ष दिखाई पड़ा (**शमीगर्भं चाश्वत्थमग्निस्थालीस्थाने दृष्टवा**)। उसने सोचा कि मैंने यहीं तो अग्निस्थाली फेंक दी थी (निक्षिप्ता)। अवश्य ही वही शमीगर्भ पीपल के रूप में परिणत हो गयी है। यह अश्वत्थ (पीपल) अग्नि का ही रूप है। इसे मैं अपने नगर में लेजाकर इसी से अरणि (अग्नि उत्पन्न करनेवाली लकड़ी) का निर्माण करके उससे उत्पन्न अग्नि की उपासना करूँगा। राजा तदनुसार अपने नगर में आया, अश्वथ की उसने अरणि बनायी। अँगुलियों से उसको नापते हुए उसने गायत्री मंत्र का पाठ किया। गायत्री-मंत्र के पाठ से मंत्र की अक्षर संख्या के बराबर एक-एक अंगुल की अरणियाँ हो गयीं।

अरणियों के मन्थन से उत्पन्न अग्नि के तीनों रूपों में (गार्हपत्य, आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि) राजा ने वैदिक विधि से हवन किया। यज्ञ में उसने यह फल कल्पित किया कि उर्वशी का सालोक्य मिले (**उर्वशीसालोक्यं फलमभिसांहितवान्**)[9]।' उसी अग्नि से नाना प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करते हुए राजा ने गन्धर्वलोक की प्राति की। उर्वशी से फिर उनका वियोग नहीं हुआ।

अन्त में भागवतपुराण के समान इस पुराण में भी निष्कर्ष रूप से कहा गया है कि पूर्वकाल में एक ही अग्नि था, उसी से इस मन्वन्तर में तीन अग्नियों का प्रचार हुआ।' भागवतपुराण में अग्नि के एकरूपत्व के अतिरिक्त वेद के एकत्व का भी निरूपण है

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः।

देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निवर्ण एव च।। [10]

यह कहा जा चुका है कि पुरूरवा ही प्रथम यज्ञकर्ता था जिसने वैदिक विधि के अनुसार तीनों अग्नियों की स्थापना की तथा यज्ञसंस्था का प्रचार किया।

उपर्युक्त दोनों पुराणों में उर्वशी का जो आख्यान प्रस्तुत किया गया है उसके दो स्पष्ट अंश हैं। एक अंश तो प्रेमाख्यान के रूप में है और दूसरा अंश धार्मिक अथवा यज्ञपरक है। जहाँ तक प्रेमाख्यान का प्रश्न है वह ऋग्वेद के संवाद-सूक्त की परम्परा को अग्रसारित करता है। आख्यान का दूसरा अंश शतपथब्राह्मण से आरम्भ होनेवाली यज्ञसंस्था को विकसित करता है। दोनों ही स्थितियों में पुराण वैदिक परम्परा की व्याख्या करते हैं। पुराणों में कुशलतापूर्वक यज्ञ का महत्त्व दिखाया गया है कि अग्नि में हवन करने से अभीष्ट की सिद्धि होती है। ऐसी स्थिति में यह प्रतीत होता है कि तथाकथित प्रेमाख्यान अर्थवाद है और यज्ञानुष्ठान का विधान विधिरूप है। गन्धर्वों के द्वारा अग्निस्थाली का उपहार, उससे अरणि के काष्ठ की उत्पत्ति तथा तदनन्तर अग्नि को उत्पन्न कर के सकाम यज्ञ का सम्पादन अवश्य ही प्राचीन धार्मिक मानस को तृप्त करता था। इस दृष्टि से शतपथब्राह्मण एवं उपर्युक्त दोनों पुराण प्रेमाख्यान को साधनमात्र (मीमांसा-दर्शन की भाषा में विधिशेष) मानते हैं। वे आरंभ तो उर्वशी और पुरूरवा के प्रेम प्रसंग से ही करते हैं, ऋग्वेद के मंत्र का भी प्रत्यक्ष या परोक्ष निर्देश करते हैं किन्तु निष्कर्षरूप से अन्ततः धार्मिक परिवेश देकर यज्ञ के सम्पादन पर बल देते हैं।

इस आख्यान के जितने भी आनुषंगिक रूप मिलते हैं, उनमें कुछ बातें समान हैं। उनका निरूपण यहाँ प्रासंगिक है -

(1) उर्वशी और पुरूरवा की भिन्नलोकता -

यह सभी कथाओं में स्पष्ट है कि पुरूरवा मृत्युलोक अर्थात् मनुष्यलोक का निवासी था, जबकि उर्वशी गन्धर्वलोक या स्वर्गलोक की अप्सरा थी। दो पृथक् लोकों के निवासियों के बीच प्रणय तथा परिणय का महत्त्व इस आख्यान के द्वारा सिद्ध किया गया। धर्मशास्त्र भी प्रतिपादित करते हैं कि वैवाहिक सम्बन्ध में अत्यन्त निकटता वर्जित है, दूरी की भी एक मर्यादा है। यम-यमी संवाद-सूक्त के द्वारा वैवाहिक सम्बन्ध को एक निश्चित दूरी पर रखने का प्रथम प्रयास हुआ था।

(2) प्रेमी-प्रेमिका का प्रथम सन्निकर्ष -

जब पुरूरवा और उर्वशी दो पृथक् लोकों के निवासी थे तो उनके बीच प्रथम सन्निकर्ष के स्थान तथा परिस्थितियों का प्रश्न उपस्थित होता है। वे पहली बार कहाँ मिले थे, उनके बीच आकर्षण का आधार क्या था और किन परिस्थितियों में उन्होंने एक दूसरे को देखा था। ये प्रश्न विविध रूपों में उत्तरित हैं किन्तु सभी आख्यानों में प्रेमी-प्रेमिका को प्रथम दृष्टि में ही आकृष्ट तथा सम्मोहित कहा गया है।

(3) प्रेमी-युगल का दीर्घकाल तक सहवास

सभी पौराणिक आख्यानों में पुरूरवा और उर्वशी को लम्बी अवधि तक पति-पत्नी के रूप में रहने का अवसर प्राप्त होता है। ऋग्वेद के संवाद-सूक्त में भी इसके संकेत मिलते हैं क्योंकि उर्वशी प्रथम गर्भधारण करने के अनन्तर ही पुरूरवा से वियुक्त होती है तथा आयु नामक प्रथम पुत्र को जन्म देती है। पति-पत्नी के रहते हुए दोनों को अनुराग निरन्तर प्रवर्द्धमान होता है। इस विषय में राजा पुरूरवा का अनुराग उर्वशी के अनुराग से बढ़ कर है। किसी आख्यान में उर्वशी की विरह वेदना नहीं मिलता केवल कथासरित्सागर में ही उर्वशी के विरह संताप का काव्यात्मक संकेत किया गया है। जिसका उद्देश्य वासवदत्ता को अपने विरह से उर्वशी के विरह की तुलना करने का अवसर देना है। राजा पुरूरवा तो ऋग्वेद से ही अपने अनुराग के आधिक्य के लिये रेखांकित किया गया है।

(4) प्रेमी-युगल को पृथक् करने की योजना –

वैदिक आख्यान से ले कर पौराणिक परम्परा तक में पुरूरवा और उर्वशी को एक-दूसरे से दूर करने का कार्यक्रम प्रस्तुत। इसके पीछे अनेक महत्त्वपूर्ण कारण दिये गये हैं। कहीं तो इसमें गन्धर्वों तथा इन्द्र का षढयन्त्र दिखाया गया है क्योंकि उर्वशी के अभाव में देवराज की सभा तथा गन्धर्वलोक श्री हीन हो गये थे। कहीं-कहीं भरतमुनि के शाप का भी उल्लेख है जिसके कारण दोनों को औपबन्धिक रूप से पृथक् होना पड़ता है। इस विषय में शाप का अतिप्राकृत रूप भी प्राप्त होता है। उर्वशी लता के रूप में और पुरूरवा पिशाच के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

(5) वियोग की समाप्ति के उपाय –

जैसे बौद्ध दर्शन में चतुर्थ आर्यसत्य के रूप में दु:ख निवारण का उपाय निरूपित है अथवा जैसे वैद्यकशास्त्र में रोग-निवृत्ति का उपाय प्रतिपादित किया जाता है उसी प्रकार प्रेमी-युगल की निवृत्ति भी उपायसाध्य बतायी गयी है। किसी आख्यान में उर्वशी ही राजा को करुणावश उपाय बताती है जैसे गन्धर्षों से प्रार्थना करने का उपाय अन्यतम है। गन्धर्वगण राजा को अग्निस्थाली देते हैं जिससे समुत्पन्न. शमीगर्भ अश्वत्थकाष्ठ से अरणियों का निर्माण करके राजा यज्ञ करता है और अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है। विरह का समापन हो जाता है और राजा को अन्य पुत्र भी होते है। अग्निस्थाली का प्रसंग प्राय: सभी पौराणिक आख्यानों में मिलता है। जो वस्तुत: शतपथब्राह्मण से आरंभ होता है।

(6) धार्मिक उपसंहार -

पुरूरवा और उर्वशी के आख्यानों की परंमपरा में धार्मिक उपसंहार समान रूप से मिलता है। इसी से कभी - कभी ऐसा लगता है कि आख्यान किसी यज्ञ-संस्था पर बल देने के लिये अर्थवाद के रूप में दिया गया है। दूसरे शब्दों में कहें कि उर्वशी आख्यान का आख्यानात्मक महत्त्व नहीं है अपितु अर्थवादात्मक उपयोग है। शतपथब्राह्मण और पुराणों में तो ऐसा परिवेश दिया ही गया है कि पुरूरवा प्रथम यज्ञकर्ता था जिसने त्रेताग्नि में यज्ञ किया। कथा सारित्सागर की परम्परा में भी उर्वशी-आख्यान की परिणति विष्णु की आराधना में होती है। राजा पुरूरवा बदरिकाश्रम में तपस्या करके उर्वशी से अपने वियोग की निवृत्ति के रूप में तथा दीर्घकाल तक चलनेवाले दाम्पत्य के रूप में अभीष्ट फल की प्राप्ति करता है।

(7) नर्तकी तथा राजवंश का सम्बन्ध -

आख्यानों से यह स्पष्ट होता है कि उर्वशी देवलोक की विख्यात नर्तकी थी। रम्भा, मेनका आदि उसकी सखियाँ थी। उन सबने नृत्याचार्य तुम्बुरु जैसे गुरु

से नृत्य की विधिवत् शिक्षा ली थी। उर्वशी अपनी सखियों में न केवल नृत्य - कौशल के लिये अपितु अपने आकर्षक रूप-लावण्य के लिये भी महत्त्व रखती थी। उसका नृत्य-कौशल ना केवल प्रदर्शन के लिये था अपितु अपने साहचर्य से दूसरों को नृत्य-कला का प्रशिक्षण भी दे सकती थी। इसका संकेत हमें लोककथा की परम्परा में बड़े गर्व से कहता है कि उर्वशी के साहचर्य से नृत्य-विषयक इतना ज्ञान वह रखता है जितना नृत्यचार्य तुम्बुरु के पास भी नहीं होगा।

भारतीय परम्परा में नृत्य और गायन से जीविका चलानेवाले स्त्री-पुरुष केवल मनोरञ्जन के साधनमात्र थे। उनके बीच ही वैवाहिक सम्बन्ध हो सकते थे। राजसभाओं में आने जाने का यह अर्थ नहीं था कि नर्तकियों से राजा विधिपूर्वक विवाह कर ले और उनसे राजवंश चलाये। उर्वशी का आख्यान एकमात्र अपवाद प्रस्तुत करता है जिसमें चन्द्रवंश का प्रतिष्ठित राजा, जिसकी प्रशंसा में सभी पुराण मुखर हैं एक नर्तकी से विवाह करके आयु आदि छह या आठ पुत्रों को प्राप्त करके चन्द्रवंश को विभूषित करता है। दुष्यन्त ने भी मेनका की पुत्री शकुन्तला से विवाह किया था। शकुन्तला स्वयं नर्तकी नहीं अपितु आश्रम के पवित्र वातावरण में पालित मुनिकन्या थी। इसके अतिरिक्त दुष्यन्त अनपत्य भी था, शकुन्तला से वंश चलाने की सम्भावना देख कर ही उसने प्रेम-विवाह किया था।

इस प्रकार उर्वशी आख्यान की कतिपय विलक्षणताएँ प्राप्त होती है। जिसमें नर्तकी से राजवंश चलने की पौराणिक सम्मति का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. महाभारत :-इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्। बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।।
2. राणा प्रसाद शर्मा - पौराणिक कोश, पृ 64-65 तथा 315-6.
3. पं॰ गिरिघर शर्मा चतुर्वेदी - पुराण-परिशीलन, पृ॰ 290.

4. पुराण परिशीलन पृ 293.
5. पौराणिक कोश पृ 315.
6. विष्णुपुराण – 4.6.37.
7. ऋग्वेद 10.95.15 (उत्तरार्ध) न वै स्त्रैणानि सख्यान्याहुः सालावृकाणां हृदयान्येता।
8. विष्णुपुराण 4.6.83
   ममोर्वशी सालोक्यप्राप्त्यर्थमग्निस्थाली
   गन्धर्वैर्दत्ता सा च मयाटव्यां परित्यक्ता।
9. विष्णुपुराण 4.6.92.
10. भागवतपुराण 9.14.48.